International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

# डॉ. मिथिलेश शर्मा का संस्कृत साहित्य में धार्मिक अवदान : एक विवेचन

**Dr. Narender Kumar**
Assistant Professor, Department of Sanskrit, NIILM University, Kaithal, Haryana
**Renu Yadav**
Ph.D. Research Scholar, Department of Sanskrit, NIILM University, Kaithal, Haryana

## भूमिका : -

संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन और आध्यात्मिक चेतना का मूलाधार रहा है। भारतीय सभ्यता के विकास में संस्कृत भाषा और उसके साहित्य ने जिस प्रकार मानव जीवन के नैतिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक पक्षों को दिशा प्रदान की है, वह विश्व साहित्य में अद्वितीय माना जाता है। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृतियाँ तथा काव्यग्रंथ केवल साहित्यिक रचनाएँ ही नहीं हैं, बल्कि भारतीय धर्म और जीवन-दर्शन के संवाहक भी हैं। संस्कृत साहित्य ने सदैव मानवता, धर्म, नैतिकता, करुणा, सत्य और लोकमंगल जैसे मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है। इसी कारण संस्कृत साहित्य को भारतीय संस्कृति की आत्मा कहा जाता है।

धर्म भारतीय जीवन का अभिन्न अंग रहा है। यहाँ धर्म का अर्थ केवल संप्रदाय या पूजा-पद्धति तक सीमित नहीं है, अपितु वह मानव के आचरण, कर्तव्य, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व का व्यापक स्वरूप है। भारतीय मनीषियों ने धर्म को लोककल्याण और आत्मोन्नति का साधन माना है। संस्कृत साहित्य में धर्म के इसी व्यापक स्वरूप का निरूपण हुआ है। ऋग्वेद से लेकर आधुनिक संस्कृत साहित्य तक धार्मिक चेतना की अखंड धारा प्रवाहित होती रही है। संस्कृत साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से धर्म और अध्यात्म को जनमानस तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में अनेक विद्वानों एवं साहित्यकारों ने धार्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना का प्रयास किया है। इन साहित्यकारों में डॉ. मिथिलेश शर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने संस्कृत साहित्य की परंपरा को आधुनिक युग में नवीन दृष्टिकोण प्रदान करते हुए धार्मिक चेतना, भारतीय संस्कृति, नैतिक मूल्यों तथा आध्यात्मिक विचारधारा को अपनी रचनाओं में सशक्त रूप से अभिव्यक्त किया है। उनका साहित्य केवल साहित्यिक सौंदर्य तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें धार्मिक संवेदना, सामाजिक उत्तरदायित्व और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भावना भी निहित है।

डॉ. मिथिलेश शर्मा संस्कृत भाषा और साहित्य के ऐसे विद्वान हैं जिन्होंने अपने लेखन द्वारा भारतीय धार्मिक परंपरा को सुदृढ़ करने का प्रयास किया। उनकी रचनाओं में धर्म के विविध आयाम—आध्यात्मिकता, भक्ति, नैतिकता, मानवतावाद, संस्कार, लोकमंगल और सांस्कृतिक चेतना—स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। उन्होंने अपने साहित्य में भारतीय संस्कृति के उन आदर्शों को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है, जो आधुनिक युग में कहीं न कहीं क्षीण होते दिखाई देते हैं। उनके साहित्य में धार्मिक भावना केवल कर्मकांड तक सीमित नहीं है, बल्कि वह मानवीय मूल्यों और जीवन के आदर्शों से गहराई से जुड़ी हुई है।

डॉ. मिथिलेश शर्मा के साहित्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उन्होंने संस्कृत साहित्य की परंपरागत शैली को आधुनिक विचारधारा से समन्वित किया है। उनकी रचनाओं में धार्मिकता के साथ-साथ सामाजिक चेतना भी विद्यमान है। वे धर्म को मानव जीवन के परिष्कार का माध्यम मानते हैं। उनके

साहित्य में वर्णित धार्मिक विचार समाज को नैतिकता, सदाचार और आध्यात्मिक उन्नति की ओर प्रेरित करते हैं। इस दृष्टि से उनका साहित्य केवल धार्मिक ग्रंथों का अनुकरण नहीं है, बल्कि समकालीन समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप धार्मिक मूल्यों की पुनर्व्याख्या भी है।

वर्तमान युग भौतिकतावाद, उपभोक्तावाद और नैतिक पतन का युग माना जा रहा है। आधुनिक मनुष्य भौतिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति में इतना व्यस्त हो गया है कि वह आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों से दूर होता जा रहा है। ऐसे समय में संस्कृत साहित्य और विशेष रूप से डॉ. मिथिलेश शर्मा जैसे साहित्यकारों की रचनाएँ अत्यंत प्रासंगिक हो जाती हैं। उनका साहित्य मानव जीवन में धर्म, नैतिकता और संस्कृति की महत्ता को पुनः स्थापित करने का प्रयास करता है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से यह संदेश दिया है कि धर्म का वास्तविक उद्देश्य मानव जीवन को श्रेष्ठ बनाना और समाज में सद्भाव, शांति तथा नैतिकता की स्थापना करना है।

डॉ. मिथिलेश शर्मा की साहित्यिक कृतियों में धार्मिक भावना के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के प्रति गहन आस्था दिखाई देती है। उन्होंने भारतीय परंपरा, संस्कार और जीवन मूल्यों को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनकी रचनाओं में धार्मिक प्रतीकों, पौराणिक प्रसंगों और दार्शनिक चिंतन का सुंदर समन्वय मिलता है। वे भारतीय धर्म और संस्कृति को केवल अतीत की धरोहर के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसे वर्तमान और भविष्य के लिए भी उपयोगी मानते हैं। यही कारण है कि उनका साहित्य आधुनिक संदर्भों में भी अत्यंत सार्थक प्रतीत होता है।

धार्मिक अवदान के संदर्भ में डॉ. मिथिलेश शर्मा का साहित्य विशेष अध्ययन की अपेक्षा रखता है। यद्यपि संस्कृत साहित्य के अनेक विद्वानों पर शोधकार्य हुए हैं, तथापि डॉ. मिथिलेश शर्मा के धार्मिक योगदान का समग्र एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है। इसलिए उनके साहित्य में निहित धार्मिक चेतना, सांस्कृतिक दृष्टि और आध्यात्मिक विचारधारा का अध्ययन अत्यंत आवश्यक एवं प्रासंगिक है। प्रस्तुत शोध "डॉ. मिथिलेश शर्मा के संस्कृत साहित्य में धार्मिक अवदान : एक विवेचन" इसी उद्देश्य से किया जा रहा है।

इस शोध का प्रमुख उद्देश्य डॉ. मिथिलेश शर्मा के साहित्य में निहित धार्मिक तत्वों का विश्लेषण करना है। साथ ही यह अध्ययन उनके साहित्य में प्रतिपादित धार्मिक आदर्शों, नैतिक मूल्यों, सांस्कृतिक चेतना तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण का सम्यक् विवेचन भी करेगा। इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा कि डॉ. मिथिलेश शर्मा ने संस्कृत साहित्य के माध्यम से भारतीय धर्म और संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन में किस प्रकार योगदान दिया है।

प्रस्तुत शोध में डॉ. मिथिलेश शर्मा की प्रमुख साहित्यिक कृतियों का अध्ययन किया जाएगा तथा उनमें वर्णित धार्मिक भावनाओं, प्रतीकों, आदर्शों और दार्शनिक विचारों का विश्लेषण किया जाएगा। इसके अतिरिक्त उनके साहित्य की भाषा-शैली, अभिव्यक्ति-कौशल तथा धार्मिक चेतना की साहित्यिक प्रस्तुति का भी मूल्यांकन किया जाएगा। शोध का उद्देश्य केवल उनके साहित्य का परिचय देना नहीं है, बल्कि उनके धार्मिक योगदान की मौलिकता और समकालीन उपयोगिता को भी स्पष्ट करना है।

यह शोध वर्तमान समाज के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि आज के समय में नैतिक और धार्मिक मूल्यों का ह्रास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। ऐसे में डॉ. मिथिलेश शर्मा का साहित्य समाज को नैतिकता, सदाचार और सांस्कृतिक चेतना की ओर प्रेरित कर सकता है। उनके साहित्य में प्रतिपादित धार्मिक आदर्श मानव जीवन को संतुलित, शांतिपूर्ण और मूल्यनिष्ठ बनाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

अतः यह कहा जा सकता है कि डॉ. मिथिलेश शर्मा का संस्कृत साहित्य धार्मिक चेतना, सांस्कृतिक समन्वय और मानवीय मूल्यों का महत्वपूर्ण संवाहक है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय धर्म और संस्कृति की महान परंपरा को आधुनिक संदर्भों में पुनर्जीवित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। प्रस्तुत शोध उनके इसी धार्मिक अवदान का सम्यक् एवं आलोचनात्मक अध्ययन करने का विनम्र प्रयास है, जिससे संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में उनके योगदान का यथोचित मूल्यांकन किया जा सके।

**शोध के उद्देश्य : -**

किसी भी शोध कार्य में शोध के उद्देश्य उसकी आधारशिला होते हैं। ये उद्देश्य शोध को स्पष्ट दिशा, सीमाएँ और लक्ष्य प्रदान करते हैं। उद्देश्यों के अभाव में शोध कार्य अस्पष्ट, बिखरा हुआ और निष्कर्षहीन हो सकता है।

शोध के उद्देश्य शोधकर्ता को यह स्पष्ट करते हैं कि किन तथ्यों का चयन करना है, किन स्रोतों का उपयोग करना है तथा किस प्रकार का विश्लेषण किया जाना है। इसके माध्यम से शोध तर्कसंगत, सुव्यवस्थित और परिणामोन्मुखी बनता है। साथ ही, उद्देश्यों के आधार पर ही शोध निष्कर्षों की प्रामाणिकता और प्रासंगिकता सुनिश्चित होती है। इस शोध के विशिष्ट उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1.आधुनिक समाज में धार्मिक मूल्यों की स्थिति का मूल्यांकन करना।

अर्थात् यह समझना कि वर्तमान सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों में धार्मिक मूल्य किस प्रकार प्रभावित हुए हैं।

2.आधुनिक समाज पर उनके विचारों के प्रभाव का अध्ययन करना

अर्थात् युवा वर्ग, सामाजिक संस्थाओं एवं सांस्कृतिक चेतना पर उनके धार्मिक मूल्यों के प्रभाव को समझना।

**शोध पद्धति -**

प्रस्तुत शोध "डॉ. मिथिलेश शर्मा का संस्कृत साहित्य में धार्मिक अवदान : एक विवेचन" मुख्यतः गुणात्मक शोध पर आधारित है। इस शोध का स्वरूप वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है, जिसके अंतर्गत डॉ. मिथिलेश शर्मा के धार्मिक, नैतिक एवं दार्शनिक विचारों का व्यवस्थित अध्ययन किया गया है। शोध में उनके लेखन, प्रवचनों, भाषणों तथा सामाजिक गतिविधियों के माध्यम से आधुनिक समाज में धार्मिक मूल्यों के पुनरुत्थान में उनकी भूमिका को समझने का प्रयास किया गया है।

इस शोध कार्य में शोध के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों में डॉ. मिथिलेश शर्मा की पुस्तकें, लेख, भाषण एवं साक्षात्कार सम्मिलित हैं, जबकि द्वितीयक स्रोतों में धार्मिक, सामाजिक एवं दार्शनिक ग्रंथ, शोध पत्रिकाएँ, पत्र-पत्रिकाएँ तथा पूर्व में किए गए शोध कार्यों को शामिल किया गया है। उपलब्ध सामग्री का चयन शोध के उद्देश्यों के अनुरूप किया गया है।

**आचार्य जी का परिचय : –** डॉ० मिथिलेश शर्मा का विशेष लेखकों की परम्परा में अद्वितीय स्थान माना जाता है । इसने संस्कृत तथा हिन्दी विषय में एम.ए. की डिग्री प्राप्त की एवं सस्कृत में पीएच.डी. उपाधि प्राप्त कर ये जगत् में अपना यश एवं कीर्ति फैला रहे हैं । साहित्य का निरन्तर प्रचार-प्रसार करने में कार्यरत हैं। संस्कृत और संस्कृति के लिए ही ये अपना जीवन के पल दे रहे है । इन्होने देश –विदेश की यात्रा कर भरतीय धर्म एवं संस्कृति का भी खूब ही प्रचार – प्रसार किया है । जिसके कारण भारत का नाम विदेशों में भी बढ़े ही मान और सम्मान के साथ लिया जाता है । इसने सारे भारत में अपना और अपने परिवार का नाम रोशन किया है |

**आचार्य जी का व्यक्तित्व : –** डॉ० मिथिलेश शर्मा जी शारीरिक गठन की दृष्टि से पाँच फुट सात इच के कद एवं गहरे रंग बदन के हैं । उनके मुख पर दूर से ही लालिमा और तेज दिखाई देता है, सिर पर बहुत छोटे – छोटे घोर बाल, छोटी-छोटी मूँछों पर छोटी-छोटी दाढी मिलकर उनके चेहरे को और भी अधिक आकर्षित बना रहे हैं । एकांतप्रिय और गंभीर-मुद्रा कवि के चिंतन एवं मनन के गुणों को बढ़ा रही है। उनकी पौशाक अधिकतर कुर्ता पजामा रहती है, विशेष अवसर या उत्सव और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में धोती और कुर्ता भी धारण करते हैं। यही नहीं इन्होंने विद्यालय समय में नक्षत्रों के अनुसार सप्ताह के सातो दिन वर्षों के अनुसार वस्त्र भी धारण किए हैं। अर्थात सातों दिन अलग – अलग पौशाक धारण करना ही उनके शरीर की सुन्दरता में चार चाँद लगा देता है , सुनने तथा देखने पर मुझे उनका व्यक्तित्व विशेष ही आकर्षक प्रतीत हुआ। इससे भी ज्यादा आचार्य जी की स्पष्टवादिता, निष्पक्षता, दयालुता, सघर्षशीलता, बहुआयामी, देशप्रेमी एवं चिंतनशील व्यक्तित्व के रूप में उभारकर सामने लाती है। (1)

**आचार्य जी का जीवनकाल :-** डॉ . मिथिलेश शर्मा जी का जन्म 01 मार्च, 1960 को गाँव पुर तहसील भवानी खेड़ा के जिला भिवानी में एक साधारण विप्र कुल में हुआ। आचार्य जी के दादा श्री हीरालाल जी प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं लोक कला एवं लोक व्यवहार के बहुत ही कुशल विचारशील स्वाभिमानी व्यक्तित्व की प्रवृत्ति के धनी एवं महान व्यक्ति थे । आचार्य जी के पिता श्री स्वर्गीय ब्रजलाल शास्त्री जी संस्कृत महाविद्यालय में तथा राजकीय उच्चविद्यालय में सस्कृत शिक्षक रहे और वहीं पर शास्त्री जी 1961 से 1965 तक राजकीय उच्च विद्यालय भिवानी में सरकारी सेवा करते हुए सध्या कालीन शिक्षा श्री हरियाणा शेखावटी ब्रह्मचर्य आश्रम भिवानी में अपना आवास रखते हुए प्रदान करते रहे थे। इससे भी बढ़कर ख़ुशी कि इसने सनातन परंपरा का निर्वहण करते हुए लगातार पाँच वर्ष तक कपिला गाय के घी से पच कुडीय यज्ञ (अग्निहोत्र) नित्य प्रति करते रहे। आचार्य जी के स्वर्गीय पिता श्री ब्रजलाल शास्त्री जी जूते और सिले हुए कपड़े नहीं पहनते थे । अर्थात वे अपने कपड़े खुद ही सिलवाते एवं जुते भी सिलवाकर ही पहनते थे , इस पर मैं यह कहने में संकोच नहीं करती हूँ कि वे गृहस्थ-योगी ऋषि थे। इस परिवार में साहित्य व भारतीय संस्कृति काफी लम्भे समय से प्राणों में गहराई से विराजमान रही है। इस प्रकार आचार्य जी को आशीर्वाद में ही संस्कृत भाषा मिल गई है। और इस पर मैं बड़े सोच विचार कर कह सकती हूँ, 'यथा बीज तथा फलम' की उक्ति उनके व्यक्तित्व पर सत्य चरितार्थ होती है। आचार्य जी की दादी श्रीमीरा तो लोक-कला की मास्टर माईंड परिगणित की जाती थी। यदि किसी के यहाँ पुत्र, विवाह एवं शादी आदि उत्सव हो तो उनकी उपस्थिति अनिवार्य सी मानी जाती थी। क्योंकि उनके बिना कार्यक्रम सम्पूर्ण नही माना जाता है , कविवर आचार्य जी की पूज्य माता श्रीमती अंची देवी अत्यंत धार्मिक विचारों, दयालु स्वभाव और कठोर परिश्रमी महिला थी। बालक मिथिलेश शर्मा जी पर उनकी माता श्री के कठोर श्रम का प्रभाव हमेशा देखने को मिलता है। आचार्य जी अध्ययन, अध्यापन के साथ-साथ गृहस्थ के समस्त कार्यो में कुशल है। उनके जीवन में उनकी माता श्री के सानिध्य का आधिक्य रहा, क्योंकि लेखक के पिता सरकारी नौकरी के कारण कई स्थानों पर स्थानातरित होते रहे इसलिए उनका प्रेम कम मात्रा में ही उनको प्राप्त हो सका। अनेक महापुरुषों की जीवनियों का प्रभाव उनके चरित्र पर हमेशा दृष्टिगोचर होता है। आचार्य जी के जन्म के समय उनके पिता श्री पेटवाड (हिसार) में संस्कृत अध्यापक के रूप में कार्यरत थे। यंहा पर ये देखने को मिलता है कि इनका सारा परिवार अध्यापन कार्य से जुड़ा हुआ है, जिससे इन्होंने समाज सेवा एवं मानव शिक्षा का कार्य करने के लिए सदा ही तत्पर रहते है | (2)

**शिक्षा -** डॉ. मिथिलेश जी का कहना है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को नष्ट करने के बजाय उसे समाज के लिए समर्पित करना बहुत लाभकारी सिद्ध होता है। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा कहाँ रहते हैं ? यह व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। किसी व्यक्ति की खुशी के बारे में सोचना एक महत्वपूर्ण खुशी है।

समाज को नई दिशा देने और व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण के लिए 'शिक्षा' को एक महत्वपूर्ण हथियार मानना मनुष्य के लिए ज़रूरी है। शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। समाज को इसकी व्यवस्था करनी चाहिए। शिक्षा को बेचना समाज के लिए हानिकारक होगा। इसलिए शिक्षा सुनिश्चित और निःशुल्क होनी चाहिए। इस संदर्भ में, वे लिखते हैं कि बच्चे को शिक्षित करना समाज के हित में है। मनुष्य जन्म से ही पशु के समान होता है। [(3)]

शिक्षा और संस्कार के माध्यम से ही मनुष्य समाज का अभिन्न अंग बनता है। समाज के हित में काम के लिए शुल्क लेना एक विरोधाभासी बात है। कल्पना कीजिए कि कल बच्चे शिक्षा शुल्क का बहिष्कार कर दें या उसे न चुका पाने के कारण पढ़ाई छोड़ दें, क्या समाज इस स्थिति को सहन कर पाएगा? हम पेड़ लगाने और उसे सींचने के लिए उससे पैसे नहीं लेते, हम अपनी पूंजी लगाते हैं और जानते हैं कि जब पेड़ फल देगा तो हमें फल अवश्य मिलेंगे। शिक्षा भी एक ऐसा ही निवेश है। शिक्षित होकर व्यक्ति समाज के लिए काम करेगा, लेकिन जो व्यवस्था हमें बचपन से ही व्यक्तिवादी बनाती है, अगर वही समाज की उपेक्षा करने वाले लोगों को जन्म दे, तो क्या इसमें कोई आश्चर्य की बात है? भारत में, 1947 से पहले, किसी भी देशी राज्य में शिक्षा के लिए कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। उच्च स्तर तक शिक्षा निःशुल्क थी। गुरुकुल में भोजन और आवास की व्यवस्था भी आश्रम में ही होती थी, ब्रह्मचारी समाज में केवल भिक्षा मांगने जाता था। गृहस्थ ब्रह्मचारी को कोई खाली हाथ नहीं लौटाता था, अर्थात् शिक्षा की व्यवस्था समाज द्वारा की जाती थी। पंडित दीनदयाल जी कहते हैं कि शिक्षा से न केवल मानव का कल्याण होता है, बल्कि शिक्षा के माध्यम से सर्वांगीण विकास भी होता है। वे शिक्षा के तीन गुरुओं का वर्णन करते हैं। जो इस प्रकार है-

1. प्रथम गुरु माता
2. आचार्य देवो भवः
3. आत्म दिपों भवः

इन तीनों शिक्षकों के शिक्षा देने के अलग-अलग माध्यम हैं। पहला संस्कार, दूसरा शिक्षण और तीसरा स्वाध्याय। [(4)] एमिल दुर्खीम के अनुसार, "शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य समाज के मानदंडों और मूल्यों को बदलना है। [(5)] समाज तभी जीवित रह सकता है जब उसके सदस्यों में पर्याप्त मात्रा में एकता हो। शिक्षा इस एकता का निर्माण करती है और फिर उसे स्थापित करती है। यह बच्चों में शुरू से ही आवश्यक समानताएँ स्थापित करती है, जो एक सामूहिक जीवन की माँग है। प्रत्येक समाज का मुख्य दायित्व सभी व्यक्तियों को सामूहिक रूप से एकजुट करना है। व्यक्तियों में समाज से अपनेपन की भावना होनी चाहिए। दुर्खीम का कहना है कि शिक्षा व्यक्ति और समाज को मूल्यों और आदर्शों, समुदाय की परंपरा और व्यक्ति की विचारधारा के बारे में बताकर सिद्धांतों से सुसज्जित करती है। पंडित दीनदयाल जी की 'शिक्षा' शब्द की व्याख्या का सार बहुत अच्छी तरह से महसूस होता है। [(6)]

शिक्षा समाज एवं उसमें रहने वाले व्यक्ति के विकास के लिए वरदान सिद्ध हुई है, जो व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त करती है तथा उसे अत्यंत सरल बनाती है। जन्म के समय बालक

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

मात्र मांस का लोथड़ा होता है; जैसे ही यह जीव समाज के संपर्क में आता है, धीरे-धीरे सरलता से जटिलता की ओर विकसित होता है।

**डॉ.मिथिलेश शर्मा की मुख्य रचनायें -**

1. कुमार्यम्बा (एकादशैकांकिसंचयः)
2. पं० दीनदयाल उपाध्याय चरितम्
3. शौर्यगाथा (अमरहुतात्मन : ऊधमसिंहस्य)
4. स्वातन्त्रयसेनानी गाथा
5. स्वामी धर्मदेव चरितम् (खण्डकाव्यम्)
6. सुवचांसि (भाग-1, भाग-2, भाग -3) (पद्य-विद्या)

**धर्म की परिभाषा** -'डु धात्र धारणपोषणयोः धातु से मन् प्रत्यय होकर धर्म शब्द की उत्पत्ति होती है। इसमें घा धातु का अर्थ है, धारण करना अथवा पोषण करना ग्रहण किया जाता है। (7) संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुम् में लिखा है- धारयति लोकान् ध्रियते पुण्यात्मभिः इतिवा/घृ+मन = वह कर्म जिसके करने से करने वाले का इहलोक में अभ्युदय हो और परलौक में मोक्ष की प्राप्ति हो। कर्त्तव्याकर्त्तव्य-अवधारण विषयक शास्त्र। (3.1) बुद्धिमानों द्वारा धर्म शब्द का अर्थ 'धारयति इति धर्मः' माना गया है, अर्थात वह जो धारण करता है और पोषण करता है। जो धारण करने योग्य है, वही धर्म है। (8) इस व्युत्पत्ति के अनुसार, धर्म संपूर्ण ब्रह्मांड को धारण करता है। धर्म संबंधी कथन का औचित्य घड़े में सागर भरने के समान है। हमारी भारतीय संस्कृति सदैव अखंड रही है। इस अखंडता का मुख्य कारण हमारा धर्म है। या हम इसे भारतीय दर्शन के अनुसार परिभाषित कर सकते हैं –

धर्म भारतीय दर्शन और संस्कृति की एक महत्वपूर्ण और जटिल अवधारणा है, जिसे विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जाता है। यह संस्कृत धातु 'धृ' से बना है जिसका अर्थ है 'धारण करना' या 'संरक्षण करना'। अतः धर्म को एक ऐसे सिद्धांत या नियम के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो जीवन के विभिन्न पहलुओं में संतुलन और सामंजस्य बनाए रखने में सहायक होता है। यह केवल धार्मिक मान्यताओं तक ही सीमित नहीं है, बल्कि नैतिकता, आचरण, कर्तव्य और जीवन मूल्यों से भी जुड़ा है। भारतीय दर्शन में धर्म की परिभाषा समय, स्थान, परिस्थिति और व्यक्ति के अनुसार बदलती रही है। वेदों, उपनिषदों, महाभारत और भगवद्गीता जैसे ग्रंथों में धर्म को जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाभारत में धर्म को "यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः" (9) के रूप में परिभाषित किया गया है, जिससे पता चलता है कि धर्म वह शक्ति है जो सही मार्ग और न्याय की स्थापना करती है। धर्म के मुख्य तत्वों में सत्य, अहिंसा, करुणा, त्याग और आत्म-साक्षात्कार शामिल हैं। यह केवल धार्मिक कर्मकांडों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि व्यक्ति के आंतरिक गुणों और समाज के प्रति उसके दायित्वों को भी दर्शाता है। धर्म व्यक्ति के चरित्र और नैतिकता का प्रतिबिंब है, जो यह तय करता है कि वह सही और गलत में कैसे अंतर करता है और अपने कर्तव्यों का पालन कैसे करता है।

**पं. मिथिलेश शर्मा के धार्मिक कार्यों का वर्णन :-**

आचार्य डॉ. मिथिलेश शर्मा एक ऐसे विद्वान, चिंतक और समाजसेवी हैं, जिन्होंने धर्म को केवल पूजा-पद्धति या कर्मकांड तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे एक जीवन-दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने धार्मिक कार्यों के माध्यम से समाज में नैतिक जागरण, आत्मिक विकास और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके धार्मिक कार्य विविध आयामों में विभाजित किए जा सकते हैं:

**1. धार्मिक साहित्य का लेखन और प्रचार :-**

भारतीय संस्कृति का मूल आधार धर्म, अध्यात्म और नैतिकता रहे हैं। प्राचीन काल से ही धार्मिक साहित्य भारतीय समाज को दिशा प्रदान करता आया है। वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत तथा अन्य संस्कृत ग्रंथों ने न केवल धार्मिक चेतना का विकास किया, बल्कि मानव जीवन को नैतिक मूल्यों और आदर्शों से भी अनुप्राणित किया। धार्मिक साहित्य का उद्देश्य केवल पूजा-पद्धति या कर्मकांड का वर्णन करना नहीं होता, बल्कि समाज में सदाचार, मानवता, करुणा, सत्य और लोकमंगल की भावना का प्रसार करना भी होता है। इसी कारण धार्मिक साहित्य को समाज का नैतिक मार्गदर्शक कहा जाता है।

संस्कृत साहित्य में धार्मिक विचारधारा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत के साहित्यकारों ने अपने लेखन द्वारा धर्म और संस्कृति की रक्षा तथा प्रचार-प्रसार का कार्य किया है। आधुनिक युग में भी अनेक विद्वानों ने धार्मिक साहित्य की परंपरा को जीवित रखने का प्रयास किया है। डॉ. मिथिलेश शर्मा ऐसे ही साहित्यकारों में प्रमुख हैं, जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से धार्मिक चेतना और भारतीय संस्कृति के संरक्षण का महत्वपूर्ण कार्य किया। उनकी रचनाओं में धर्म के प्रति गहरी आस्था, भारतीय परंपराओं के प्रति सम्मान तथा समाज के नैतिक उत्थान की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

डॉ. मिथिलेश शर्मा ने धार्मिक साहित्य के लेखन के माध्यम से भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिक मूल्यों को जनसामान्य तक पहुँचाने का प्रयास किया। उनके साहित्य में धार्मिकता केवल सैद्धांतिक रूप में नहीं, बल्कि व्यावहारिक जीवन से जुड़ी हुई दिखाई देती है। उन्होंने अपने लेखन द्वारा यह स्पष्ट किया कि धर्म मानव जीवन को श्रेष्ठ बनाने का माध्यम है। उनके साहित्य में भक्ति, आस्था, नैतिकता, संस्कार और लोककल्याण की भावना का सुंदर समन्वय मिलता है।

धार्मिक साहित्य के प्रचार-प्रसार में भी डॉ. मिथिलेश शर्मा का विशेष योगदान रहा है। उन्होंने अपने साहित्यिक कार्यों, व्याख्यानों तथा संस्कृत भाषा के प्रचार के माध्यम से धार्मिक चेतना को समाज में स्थापित करने का प्रयास किया। उनके साहित्य का उद्देश्य केवल विद्वानों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि सामान्य जनमानस को भी धर्म और संस्कृति के महत्व से परिचित कराना था। उन्होंने आधुनिक समय में संस्कृत साहित्य को प्रासंगिक बनाते हुए धार्मिक मूल्यों को नई पीढ़ी तक पहुँचाने का कार्य किया।

वर्तमान समय में जब भौतिकतावाद और नैतिक पतन की प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं, तब धार्मिक साहित्य की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है। ऐसे समय में डॉ. मिथिलेश शर्मा का साहित्य समाज को नैतिकता, आध्यात्मिकता और सांस्कृतिक चेतना की ओर प्रेरित करता है। उनका धार्मिक साहित्य भारतीय जीवन मूल्यों का सशक्त प्रतिनिधित्व करता है तथा समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने की क्षमता रखता है। [10]

अतः यह कहा जा सकता है कि डॉ. मिथिलेश शर्मा ने धार्मिक साहित्य के लेखन और प्रचार के माध्यम से संस्कृत साहित्य को समृद्ध करने के साथ-साथ भारतीय धर्म और संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। उनका साहित्य धार्मिक चेतना, नैतिक आदर्शों और सांस्कृतिक मूल्यों का प्रभावशाली संवाहक है।

डॉ. मिथिलेश शर्मा ने अनेक धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथों की रचना की, जिनमें वेद, उपनिषद, भगवद्गीता, रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों से अनेकों उदाहरण पढ़ कर उनकों सरल भाषा एवं आधुनिक भाषा में व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने इन ग्रंथों को जटिल भाषा और रूढ़िवादी परिप्रेक्ष्य से निकालकर सामान्य जन के लिए सुलभ और ग्राह्य बनाया। इनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं :-

1. कुमार्यम्बा (एकादशैकांकिसंचयः)
2. पं० दीनदयाल उपाध्याय चरितम्
3. शौर्यगाथा (अमरहुतात्मन : ऊधमसिंहस्य)
4. स्वातन्त्र्यसेनानी गाथा
5. स्वामी धर्मदेव चरितम् (खण्डकाव्यम्)
6. सुवचांसि (भाग-1, भाग-2,भाग-3) (पद्य-विद्या)

उनके लेखन में धार्मिक मूल्यों जैसे सत्य, अहिंसा, सेवा, संयम और करुणा को केंद्र में रखा गया है।

**2. प्रवचन, व्याख्यान और सार्वजनिक संवाद : -**

डॉ. मिथिलेश शर्मा ने अपने प्रवचनों, व्याख्यानों तथा सार्वजनिक संवादों के माध्यम से धार्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे केवल एक साहित्यकार ही नहीं, बल्कि एक प्रभावशाली वक्ता और समाज-चिंतक भी थे। उन्होंने विभिन्न धार्मिक सभाओं, शैक्षणिक संगोष्ठियों, संस्कृत सम्मेलनों तथा सामाजिक मंचों पर अपने विचार प्रस्तुत कर समाज को धर्म और संस्कृति के प्रति जागरूक करने का कार्य किया।

उनके प्रवचनों में भारतीय धर्म और संस्कृति की गहरी समझ दिखाई देती है। वे धर्म को संकीर्ण अर्थों में न लेकर मानव जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान का माध्यम मानते थे। उनके व्याख्यानों में सत्य, अहिंसा, सदाचार, करुणा, मानवता तथा लोकमंगल जैसे मूल्यों पर विशेष बल दिया गया है। उन्होंने अपने विचारों के माध्यम से यह संदेश दिया कि धर्म का वास्तविक उद्देश्य समाज में शांति, सद्भाव और नैतिकता की स्थापना करना है।

डॉ. मिथिलेश शर्मा की वक्तृत्व शैली सरल, प्रभावशाली और प्रेरणादायक थी। वे कठिन धार्मिक और दार्शनिक विषयों को भी सहज भाषा में प्रस्तुत करते थे, जिससे सामान्य जनमानस भी उनके विचारों को आसानी से समझ सके। उनके सार्वजनिक संवादों का उद्देश्य केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं था, बल्कि समाज में सांस्कृतिक चेतना और नैतिक जागरूकता उत्पन्न करना भी था।

उन्होंने संस्कृत भाषा और साहित्य के महत्व को भी अपने व्याख्यानों में विशेष रूप से रेखांकित किया। उनके अनुसार संस्कृत केवल एक भाषा नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिक परंपरा की वाहक है। इस प्रकार डॉ. मिथिलेश शर्मा ने अपने प्रवचनों, व्याख्यानों और सार्वजनिक संवादों के माध्यम से धार्मिक चेतना, सांस्कृतिक मूल्यों और संस्कृत साहित्य के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय योगदान प्रदान किया। [11]

उन्होंने धार्मिक विषयों पर अनेक स्थानों पर प्रवचन दिए – विश्वविद्यालयों, धर्मसभा, यज्ञशालाओं, टीवी चैनलों और रेडियो माध्यमों से। उनके प्रवचनों की विशेषता यह थी कि वे श्रोताओं को केवल धार्मिक जानकारी नहीं देते थे, बल्कि धर्म को आचरण में उतारने की प्रेरणा भी देते थे। उनके विषयों में शामिल रहे :-

1.“कुमार्यम्बा”(एकादशैकांकिसंचयः)
2.“धर्म बनाम कर्मकांड”
3.“आधुनिक युवा और गीता”
4.“धार्मिक सहिष्णुता का महत्व”
5. ‘’स्वामी धर्मदेव चरितम् (खण्डकाव्यम्)’’

**3. शिक्षा का प्रसार :-**

डॉ. मिथिलेश शर्मा ने शिक्षा को मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का प्रमुख आधार माना है। उनके अनुसार शिक्षा केवल अक्षरज्ञान या जीविकोपार्जन का साधन नहीं है, बल्कि वह व्यक्ति के नैतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक विकास का माध्यम भी है। भारतीय संस्कृति में शिक्षा को सदैव आत्मविकास और समाज कल्याण से जोड़ा गया है। इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए डॉ. मिथिलेश शर्मा ने अपने साहित्य, शिक्षण कार्य तथा व्याख्यानों के माध्यम से शिक्षा के महत्व को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया।

डॉ. मिथिलेश शर्मा विशेष रूप से संस्कृत शिक्षा के प्रचार-प्रसार के पक्षधर थे। उनका मानना था कि संस्कृत भाषा भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन और प्राचीन ज्ञान-विज्ञान की मूल आधारशिला है। यदि नई पीढ़ी संस्कृत भाषा और उसके साहित्य से जुड़ी रहेगी, तभी भारतीय संस्कृति और परंपराओं का संरक्षण संभव हो सकेगा। उन्होंने संस्कृत शिक्षा को केवल धार्मिक अध्ययन तक सीमित न मानकर उसे नैतिकता, संस्कृति और जीवन मूल्यों की शिक्षा का माध्यम माना।

उन्होंने अपने साहित्य में भी शिक्षा के महत्व को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया है। उनके विचारों में ऐसी शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया है, जो व्यक्ति को केवल भौतिक दृष्टि से सक्षम न बनाए, बल्कि उसमें मानवीय गुणों का भी विकास करे। वे शिक्षा को चरित्र निर्माण का साधन मानते थे। उनके अनुसार यदि शिक्षा में नैतिकता और संस्कारों का समावेश न हो, तो वह अधूरी मानी जाएगी। इसलिए उन्होंने विद्यार्थियों में सत्य, अनुशासन, सदाचार, कर्तव्यनिष्ठा और मानवता जैसे मूल्यों के विकास पर विशेष बल दिया।

डॉ. मिथिलेश शर्मा ने शिक्षा को सामाजिक जागरूकता का माध्यम भी माना। उनका विचार था कि शिक्षित समाज ही प्रगतिशील और सशक्त समाज बन सकता है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक होता है तथा समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने में सक्षम बनता है। उन्होंने विशेष रूप से युवाओं को भारतीय संस्कृति और परंपराओं के प्रति जागरूक करने का प्रयास किया। उनके अनुसार आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ भारतीय ज्ञान परंपरा का अध्ययन भी आवश्यक है, ताकि नई पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ी रह सके।

उनके व्याख्यानों और सार्वजनिक संवादों में शिक्षा का विषय प्रमुख रूप से उपस्थित रहता था। वे विद्यार्थियों को केवल परीक्षा और नौकरी तक सीमित शिक्षा से आगे बढ़कर जीवनोपयोगी शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा देते थे। उनका मानना था कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य व्यक्ति को आदर्श नागरिक बनाना है। उन्होंने शिक्षा में आध्यात्मिकता और नैतिक मूल्यों के समावेश की आवश्यकता पर बल दिया, क्योंकि बिना नैतिकता के शिक्षा समाज के लिए लाभकारी नहीं हो सकती।

डॉ. मिथिलेश शर्मा ने शिक्षकों की भूमिका को भी अत्यंत महत्वपूर्ण माना। उनके अनुसार शिक्षक केवल ज्ञान देने वाला व्यक्ति नहीं, बल्कि समाज का मार्गदर्शक और चरित्र निर्माता होता है। इसलिए शिक्षक को स्वयं आदर्श जीवन अपनाना चाहिए, ताकि विद्यार्थी उससे प्रेरणा प्राप्त कर सकें। उनके विचारों में गुरु-शिष्य परंपरा के आदर्श स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। वे मानते थे कि भारतीय शिक्षा प्रणाली की विशेषता केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि जीवन मूल्यों का निर्माण भी है।

संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में उनका योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने संस्कृत भाषा को जनसामान्य तक पहुँचाने तथा उसके प्रति रुचि उत्पन्न करने का प्रयास किया। आधुनिक समय में जहाँ संस्कृत को केवल प्राचीन भाषा मानकर उपेक्षित किया जा रहा है, वहीं डॉ. मिथिलेश शर्मा ने उसके

व्यावहारिक और सांस्कृतिक महत्व को रेखांकित किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि संस्कृत साहित्य में निहित ज्ञान आज भी मानव जीवन के लिए उपयोगी और प्रेरणादायक है।

डॉ. मिथिलेश शर्मा ने शिक्षा को राष्ट्र निर्माण का सशक्त साधन माना। उनका विश्वास था कि शिक्षित और संस्कारित युवा ही राष्ट्र को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर कर सकते हैं। इसलिए उन्होंने शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक गौरव और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने पर बल दिया। उनके साहित्य में शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत सफलता नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र की सेवा भी माना गया है। [(12)]

वर्तमान समय में जब शिक्षा का स्वरूप अत्यधिक व्यावसायिक होता जा रहा है, तब डॉ. मिथिलेश शर्मा के विचार अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। उन्होंने शिक्षा को नैतिकता, संस्कृति और मानवता से जोड़ने का प्रयास किया। उनके विचार आज भी समाज और विशेष रूप से युवा पीढ़ी को सही दिशा प्रदान करने में सक्षम हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि डॉ. मिथिलेश शर्मा ने शिक्षा के प्रसार के माध्यम से समाज में ज्ञान, नैतिकता और सांस्कृतिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति और मानवीय मूल्यों पर आधारित था, जो आज के समय में भी अत्यंत उपयोगी और प्रेरणादायक है।

**4. समाजसेवा एवं धर्म :-**

डॉ. मिथिलेश शर्मा ने अपने साहित्य और विचारों में समाजसेवा तथा धर्म के गहरे संबंध को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार धर्म केवल पूजा-पाठ या कर्मकांड तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज के कल्याण और मानव सेवा से भी जुड़ा हुआ है। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि सच्चा धर्म वही है, जो मानवता, करुणा, सहानुभूति और लोकमंगल की भावना को विकसित करे। [(13)] अतः मनुस्मृति में भी वर्णन मिलता हैं कि धर्म सनातन है। सनातन का अर्थ है,'शाश्वत या हमेशा बना रहने वाला। जिसका न आदि है न अन्त। आधुनिक युग में हमारा भारतवर्ष सनातन धर्म का एकमात्र केन्द्रबिन्दु है। धर्म निरुत्पत्ति वाला है, धर्म अन्तहीन है. धर्म अमर है अतः धर्म सनातन है, शाश्वत है। शास्त्रों में "वेदोंऽखिलो धर्ममूलम्'' धर्म का मूल वेद है यह प्रमाणित किया गया है। [(14)] अर्थात् धर्म की उत्पत्ति वेद से ही है।

याज्ञवल्क्य के मत में याज्ञवल्क्य भी धर्म की उत्पत्ति वेद से बताते हैं, वेद धर्म की नींव है. वेद ही धर्म का मूल हैं जैसे बिना नींव के इमारत नहीं बनती. बिना मूल के वृक्ष नहीं हो सकता, उसी प्रकार बिना वेद के धर्म नहीं हो सकता यह सिद्ध होता है। [(15)] भारतीय परम्परा में वेदों को अपौरुषेय माना जाता है। [(16)] वेदा अपौरुषेयाः अर्थात् वेदों का जन्म किसी पुरुष से नहीं हुआ है वेद अजन्मा है जिसका जन्म नहीं होता उसकी मृत्यु भी कभी नहीं हो सकती। अर्थात् वेद अमर हैं। यही कारण हैं, कि भारतीय संस्कृति का तथा संस्कृत का आधार वेदों को माना गया है। इसलिए ही वेदों को साक्षात भगवान विष्णु अथवा "विराट पुरुष भी माना गया है।

डॉ. मिथिलेश शर्मा के विचारों में समाजसेवा को धर्म का महत्वपूर्ण अंग माना गया है। वे मानते थे कि निर्धनों, असहायों और जरूरतमंदों की सहायता करना ही वास्तविक धार्मिकता है। उनके साहित्य में मानव सेवा, नैतिक आचरण तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उन्होंने अपने लेखन और सार्वजनिक विचारों के माध्यम से समाज को यह संदेश दिया कि धर्म का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत मोक्ष नहीं, बल्कि समाज में शांति, सद्भाव और कल्याण की स्थापना भी है।

IJARMT
International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति के उन आदर्शों का वर्णन मिलता है, जिनमें "वसुधैव कुटुम्बकम्" तथा "परोपकार" की भावना प्रमुख है। उन्होंने धर्म और समाजसेवा के समन्वय द्वारा मानव जीवन को अधिक सार्थक और मूल्यवान बनाने का प्रयास किया। इस प्रकार डॉ. मिथिलेश शर्मा ने धर्म को व्यावहारिक जीवन से जोड़ते हुए समाजसेवा को धार्मिक चेतना का अभिन्न अंग सिद्ध किया।

उन्होंने सेवा कार्यों को ही सबसे बड़ा धर्म माना। उनका मानना था कि भूखे को भोजन, पीड़ित को सहारा और अशिक्षित को ज्ञान देना ही सच्चे धर्म की पहचान है । उन्होंने आपदाओं में राहत कार्य, निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति, और वृद्धाश्रमों की सहायता जैसे कार्य उनके धार्मिक दृष्टिकोण का हिस्सा रहे। इसके अलावा उन्होंने धार्मिक आयोजनों को सामाजिक कल्याण से जोड़ा — जैसे यज्ञों के साथ स्वास्थ्य शिविर, भजन कार्यक्रमों के साथ रक्तदान आदि।

**5.धर्मनिष्ठा और राष्ट्रधर्म का ज्ञान : –**

डॉ . मिथिलेश शर्मा की विचारधारा को काव्य के माध्यम से इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि राष्ट्र ही परम धर्म है। "एकात्म मानववाद" की नींव में भी यह विचार अंतर्निहित है कि समाज, व्यक्ति और राष्ट्र – तीनों के संतुलन में धर्मनिष्ठा का योगदान आवश्यक है। गीता में भी धर्म के विषय में भगवान जी ने अर्जुन को धर्म के महत्त्व को समझाया है ,और इस पर कहा है -

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।" 4/7

इसका अर्थ है: "हे भारत (अर्जुन), जब-जब धर्म की ग्लानि यानी हानि होती है और अधर्म में वृद्धि होती है, तब-तब मैं (श्री कृष्ण) धर्म के अभ्युत्थान के लिए स्वयं की रचना करता हूं, अर्थात अवतार लेता हूं।" **(17)**

डॉ . मिथिलेश शर्मा ने अपने काव्य में धर्म के विषय में सुंदर रूप से वर्णन किया हैं , और लिखते हैं कि पं० दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद को एक प्रत्यक्ष जीवन का दर्शन कहा है जिसका मानव के दैनिक दिनचर्या में आचार-विचार का पूर्णतः प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इसलिए एकात्म मानव धर्म मनुष्य के समस्त समन्वित प्रगति तथा विकास सम्पूर्ण सृष्टि धर्म, परमेष्टि धर्म के आधार पर सुस्पष्टता के साथ एक कर्तव्यपूर्ण रुप से सहयोग भाव है। इसका कारण मुख्यतः स्वार्थ निरपेक्ष वृत्ति से व्यक्तिगत तथा समष्टिगत कर्म है। जिसमें मानव के चारों पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को अपने नैतिक जीवन दृष्टि में अपना कर मानवता को जागृत रखना है। यही धर्म व्यक्तिगत व्यवहार को सामुदायिक, सामाजिक मानवता को पुष्पित एवं पल्लवित करती है। सृष्टि समष्टि क्या परमेष्टि के आधार पर ही मानवता का उद्गार हो सकेगा। धर्म एक कर्तव्यरुप व्यवस्था है। जिसका उन्नयन मानव को उनके बोध ज्ञान को जागृत करके संस्कारों के आधार पर मानव को एक स्थिर पद प्राप्त किया जा सकता है। प. दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार एकात्म मानववाद की प्रासंगिकता धर्म मानवता को एकात्म मनोभाव को जागृत एवं सांस्कारिक बनाता है। उनके अनुसार धर्म के बिना किसी भी सामाजिक व्यवस्था को गतिशील नहीं बना सकते। इसी के आधार पर सम्पूर्ण मानव जगत विराजमान है। विश्व का कोई भी समाज को वहाँ पर धर्म एक सर्वप्रमुख संस्था है। जो राष्ट्र के आधारशिला के रुप में विद्यमान है। चाहे वह पश्चिमी समाज हो (अमेरिका, इंग्लैण्ड, यूरोप आदि) या फिर एशियाई समाज के मानव (भारत) सभी स्थानों पर धर्म किसी न किसी रूप में एक प्राथमिक ईकाई के रुप में इंगित करती है। **(18)**

अतःपं. मिथिलेश शर्मा ने अपने संस्कृत साहित्य में धर्म के महत्व को अत्यंत प्रभावी और गहन रूप में प्रस्तुत किया है। उनका दृष्टिकोण धर्म को एक ऐसे सार्वभौमिक सिद्धांत के रूप में स्थापित करता है, जो

मानव जीवन को नैतिकता, कर्तव्य और सदाचार की दिशा में प्रेरित करता है तथा समाज और संस्कृति के समुचित विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। यही उनके सांस्कृतिक अवदान की एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण विशेषता है।

**निष्कर्ष :-** आधुनिक समाज में धार्मिक मूल्यों के पुनरुत्थान की प्रक्रिया में डॉ. मिथिलेश शर्मा का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रेरणादायक रहा है। उन्होंने न केवल भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं एवं धार्मिक मूल्यों की गहराई से व्याख्या की, बल्कि उन्हें समकालीन संदर्भ में प्रासंगिक बनाकर समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। उनके लेखन, भाषणों एवं सामाजिक गतिविधियों के माध्यम से धर्म को केवल एक आस्था का विषय न मानकर उसे नैतिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व और मानवता की दृष्टि से व्याख्यायित किया गया।

इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि डॉ. मिथिलेश शर्मा ने न केवल धार्मिक मूल्यों को पुनर्जीवित किया, बल्कि उन्हें आधुनिक समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक संरचना में फिर से स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका योगदान आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणास्रोत बना रहेगा।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-**

1. डॉ. मिथिलेश शर्मा, शौर्यगाथा (अमरहुतात्मनः ऊधमसिहस्य) परिचय भाग
2. डॉ.मिथिलेश शर्मा, पं० दीनदयाल उपाध्याय चरितम्, परिचय भाग
3. जे.पी. सिंह, समाजशास्त्र की अवधारणा एवं सिद्धान्त, पृ. 43.
4. विचार तिथि मिशनरी और शिक्षा संस्थाएं, पांजन्य, 24 अक्टूबर, 1955, पृ. 99.
5. परिमल, बी., समाजशास्त्र, सामाजिक अन्तः क्रियाओं का अध्ययन, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ. 468
6. डॉ. मिथिलेश शर्मा, पं० दीनदयाल उपाध्याय चरितम्, पृष्ठ. 63
7. डॉ० रामकिशोर शर्मा, बृहद् धातु शब्दरूपसंग्रह, वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2016, पृ. 247।
8. चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा, संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, प्रयाग : रामनारायणलाल प्रकाशन, पृ. 564।
9. श्रीमद्भगवद्गीता – श्री परमहंस स्वामी अड़ंगड़ानन्द,न्यू अपोलो स्टेट,गली न. – 5,
मोगरा लेन, अंधेरी (पूर्व),मुम्बई – 400069
10. स्वामी धर्मदेव चरितम् (खण्डकाव्यम्),भूमिका भाग
11. सुवचांसि ,भाग-1 (पद्य-विद्या) परिचय भाग
12. स्वामी धर्मदेव चरितम् (खण्डकाव्यम्) भूमिका भाग
13. स्वामी धर्मदेव चरितम् (खण्डकाव्यम्) भूमिका भाग
14.. महर्षि मनु , मनुस्मृतिः, 2/8
15.चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्यत्त्रैविद्यमेव वा।
सा ब्रूते यं स धर्मः स्यादे को वाऽध्यात्मवित्तमः ।। याज्ञ. स्मृति 2/21
16. महर्षि मनु , मनुस्मृतिः, अध्याय 1, श्लोक 21
17. श्रीमद्भगवद्गीता (यथार्थ गीता) – मोगरा लेन अंधेरी (पूर्व) मुंबई
18 डॉ० मिथिलेश शर्मा, पं० दीनदयाल उपाध्यायचरितम्, पृष्ठ-169